ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292RNI
REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 107-110**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

कालिदास की ऊर्जस्वित चेतना का ललित रूप– 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'

डॉ0 चन्द्र किशोर शास्त्री
सहायक आचार्य–संस्कृत विभाग,ब्रह्मावर्त पी.जी.कॉलेज, मन्धना, कानपुर नगर, (उ0प्र0) भारत

Received-21.10.2024, Revised-27.10.2024, Accepted-02.11.2024 E-mail : aaryvart2013@gmail.com

***सारांशः** नाटक सबके लिए उपादेय होने के कारण ही भरत मुनि ने इसे सार्ववर्णिक वेद कहा है– 'त्रैलोक्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्'। वस्तुतः नाटक में तीनों लोक के भावों का अनुकीर्तन होता है। इसीलिए कालिदास ने भिन्न रूचि वाले लोगों के लिए नाटक को एक सामान्य मनोरंजन का साधन कहा है– 'नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्'। अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण नाटक का संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान है और कहा भी गया है – 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'।*

***कुंजीभूत शब्द–** ऊर्जस्वित, अभिज्ञानशाकुन्तलम, सार्ववर्णिक वेद, अनुकीर्तन, मनोरंजन, ह्रदयग्राहिता, भावाभिव्यक्ति, वैविध्य*

प्रस्तावना–'काव्येषु नाटकं रम्यम्' अर्थात् काव्य में नाटक रमणीर होता है, क्योंकि नाटक में श्रव्यकाव्य की अपेक्षा ह्रदयग्राहिता, मनोरंजकता, आकर्षकता, भावाभिव्यक्ति और विषय वैविध्य की अधिकता होती है। देखा भी जाता है कि सुनने की अपेक्षा देखने में अधिक आनन्द आता है। काव्य में जहाँ रसानुभूति के लिए अर्थज्ञान आवश्यक है, वहीं नाटक में दर्शन मात्र से ही आनन्दानुभूति होती है। अतः नाटक की समता चित्र से करते हुए आचार्य वामन ने काव्यालंकारसूत्र में लिखा है–सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्धि चित्रं चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात्। वास्तव में चित्र के विविधरङ्ग जिस प्रकार सहृदयों के चित्त में रसानुभूति कराते हैं, उसी प्रकार नाटक वेश–भूषा, नेपथ्य–रचना आदि के माध्यम से दर्शक के ह्रदय में आनन्द का संचार करता है। काव्य में रसानुभूति कल्पना प्रस्तुत होने के कारण सहृदयों को हुआ करती है। नाटक में रसोपभोग की सकल सामग्री एकशः उपलब्ध होने के कारण ही इसे कवित्व की पराकाष्ठा माना गया है– 'नाटकान्तं कवित्वम्'।

शोधपत्र का उद्देश्य– नाट्यरचना में महाकवि कालिदास की ऊर्जस्वित चेतना से सहृदय सामाजिक को अवगत कराना।

मुख्यविषय/विषय का उपस्थापन– कालिदास की मंगलविधायी चेतना का मणिमय निष्कर्ष "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" है। कालिदास की नाट्य–कृतियों में अन्तिम होने के कारण यह उनकी परिपक्व मेधा का जीवन्त स्फुरण है। कालिदास मानव मन की अतल गहराई में छिपे हुए भावों के कलात्मक चित्रण में सिद्धहस्त हैं। भारतीय तथा पाश्चात्त्य सभी विद्वानों ने कालिदास के चिन्तन मुक्ताओं का समान रूप से अभिनन्दन किया है।

काव्य में नाटक की रमणीयता सर्वविदित है। ह्रदय की समग्रतः अपनी विभूति से आकृष्ट करने का गुण नाट्यविधा में होता है। नाट्य साहित्य में अभिज्ञान शाकुन्तलम् की सर्वोच्च प्रतिष्ठा विद्वानों के मध्य सुविदित तथ्य है। ह्रदयग्राही एवं रुचिकर कथावस्तु से विलसित यह कृति विबुध जनों द्वारा अभिनन्दित है।

इस परिप्रेक्ष्य में आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत अवलोकनीय है:

"अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक कालिदास के ग्रन्थों में ही शीर्ष स्थानीय नहीं है, अपितु वह संस्कृत नाटक मणिमाला का शोभायमान सुमेरु है"।[1]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अनुवाद को पढ़कर प्रसिद्ध विद्वान् गेटे ने अपनी जो प्रतिक्रिया व्यक्त की है, उससे अभिज्ञान शाकुन्तलम् की गरिमा विश्वमञ्च पर प्रतिष्ठित हुई है। गेटे के वन्दन अभिनन्दन का मूल पाठ इस प्रकार है:

ouldst thou springs blossoms
and the fruits of its decline.
Wouldst thou see by that,
The sould enraptured, feasted fed.
Wouldst thou have this earth,
and heaven in one sole name combine,
I name thee oh, Shakuntala and all at once is said.
And all by which the Soul is charmed
enraptured feasted fed ?
Wouldest thow the earth and Heaven itself
on one sole name combine?
I name the, O Shakuntala and all atonce is said.[2]

प्रो. वी. वी. मिराशी ने गेटे के इस कथन का संस्कृत में पद्यानुवाद करते हुए 'कालिदास' नामक पुस्तक के पृष्ठ –141 पर इस प्रकार दिया है:

वासन्तं कुसुमं फलं युगपद् ग्रीष्मस्य सर्व च यद्
याच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ।
एकीभूतमभूतपूर्वममथवा स्वर्लोकभूलोकयोरैश्वर्य
यदि वाञ्छसि प्रियसखे ? शाकुन्तलं सेव्यताम् ।।

अर्थात् यौवन रूपी वासन्तिक कुसुम सौरभ और प्रौढ़ता रूपी ग्रीष्म के मधुर फलों को अथवा अमृत तुल्य मानस को संतृप्त एवं मोहित करने वाली किसी अन्य वस्तु को यदि देखना चाहते हो अथवा पार्थिव ऐश्वर्य एवं स्वर्गीय सुषमा का अपूर्व सम्मिलन एक ही स्थान पर, यदि देखना चाहते हो तो "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" का सेवन (अनुशीलन) कीजिए।

उपर्युक्त विवचन से स्पष्ट है कि महाकवि कालिदास की नाट्य–विलास की विच्छित्ति में भारतीय तथा पाश्चात्त्य दोनों विद्वानों को समान रूप से आकर्षित, प्रभावित एवं प्रेरित किया है। यह 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की शैली का वैशिष्ट्य है कि अनवरत अद्यावधि इसके आकर्षण में कोविद जनों को नित्य नयी–नयी उद्भावनायें भाषित हो रही हैं।

कालिदास के प्रातिभ विलास वैभव की प्रशस्ति करते हुए सुविज्ञ टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ का अभिमत है कि:

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती ।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तुमादृशाः ।।

अर्थात् कालिदास की वाणी के सार को आज तक केवल तीन व्यक्तियों ने ही समझा है एक तो विधाता ब्रह्मा, दूसरी वाग्देवी सरस्वती और तीसरे स्वयं कालिदास। मेरे सदृश अल्पज्ञ पुरुष उनको ठीक–ठीक समझने में सर्वथा असमर्थ हैं।

वस्तुतः कालिदास नाट्य विधा के एकातपत्र अधिपति हैं। इस महामेधिर की लेखनी का संस्पर्श पाकर नाट्यकला को विबुधजन मूर्धाभिषिक्त गौरव से अलङ्कृत करते हैं। कवि ने पौराणिक आख्यानों के मधुरस को अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा से ऐसा लोक रञ्जक रूप बना दिया है, जिससे वह सर्वजन ग्राह्य हो गये हैं। कवि के अभिनन्दन में कही गई अधोविन्यस्त पंक्तियाँ उपर्युक्त भावों की अभिव्यञ्जिका है:

कालिदास कविता नवं वयो माहिषं दधि सशर्करं पयः।
शारदेन्दुरबला च कोमला स्वर्ग सौख्यमुपभुञ्जते नराः॥[3]

कालिदास की कृतियों की प्रस्तावना में उपन्यस्त विचारों से उनकी सदाशयता, विनम्रता, सर्वक्षम एवं मानवता झलकती है, किन्तु ऐसी सहृदयता के मध्य अडिग स्थित उनका आत्मगौरव, स्वाभिमान एवं आत्म विश्वास भी उल्लेखनीय है। कालिदास के पूर्व भास, सौमिल्ल, कविपुत्र जैसे प्रसिद्ध नाट्य शिल्पियों के विद्यमान रहते हुए कालिदास जैसे नवीन रचनाकार को क्यों बहुमानित किया जा रहा है। इसके प्रत्युत्तर में सूत्रधार कहता है:

पुराणमित्येव न साधु सर्व, न चापिकाव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥[4]

अर्थात् प्राचीन होने से ही सभी वस्तुएँ अच्छी नहीं मानी जा सकती हैं और न नवीन होने से सब कुछ हेय माना जा सकता है। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से दोनों का तुलनात्मक परीक्षण करके श्रेष्ठता को अङ्गीकार कर लेते हैं और मूढ़ बुद्धि जैसा दूसरे कह देते हैं। वही सत्यमान लेता है।

उपर्युक्त कथन से कालिदास का सुदृढ़ आत्मविश्वास झलकता है। उन्हें अपने नवीन नाट्य कर्म पर पूरी–आस्था है। इसी के बल पर उनकी यशपताका सर्वत्र विजयिनी सिद्ध हो सकी है। यह जीवन का चरम सत्य है कि सशक्त आत्म–विश्वास ही व्यक्ति को सफलता के चरम शिखर पर स्थापित करता है।

नाटक संस्कृत साहित्य का एक गौरवपूर्ण अङ्ग है। प्रथमतः द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व भरतमुनि ने इसका प्रामाणिक एवं तथ्यपूर्ण विवेचन अपने ग्रन्थ एवं नाट्य शास्त्र में किया है। मुनिवर का मत है कि विश्व का कोई ज्ञान, शिल्प, विज्ञान, कला, योग और कोई कर्म ऐसा नहीं है, जो नाटक में समाविष्ट न हो:

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्यं न सा विद्या न सा कला। नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्त्र दृश्यते ।।[5]

काव्यशास्त्र के मनीषियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है–1. दृश्यकाव्य, 2. श्रव्य काव्य।

यथा–दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् । दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तुरूपकम् ।।[6]

सामान्यतः दृश्य काव्य को नाटक का रूपक कहते है। दृश्यकाव्य का तात्पर्य उस काव्य से है जो दृष्टि के माध्यम से हमारे हृदय में प्रवेश करता है और रंगमंच पर अभिनीत होने पर ही आनन्द प्रदान करता है।

संस्कृत में नाटक के लिए पारिभाषिक शब्द रूपक मिलता है, क्योंकि अभिनय में अभिनेता अपने ऊपर नाटकीय पात्र का आरोप कर लेता है। उपमेय तथा उपमान का ऐक्य स्थापित कर लेने के कारण ही आनन्दोद्बोध होता है। नाट्य से तात्पर्य नाटक है जो अवस्था का अनुकरण है। जब नट अनुकरण करता है, तब उसे नाटक कहते हैं: 'अवस्थानुकृतिनाट्यम्'।[7]

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' अर्थात् काव्य में नाटक रमणीर होता है, क्योंकि नाटक में श्रव्यकाव्य की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंजकता, आकर्षकता, भावाभिव्यक्ति और विषय वैविध्य की अधिकता होती है। देखा भी जाता है कि सुनने की अपेक्षा देखने में अधिक आनन्द आता है। काव्य में जहाँ रसानुभूति के लिए अर्थज्ञान आवश्यक है, वहीं नाटक में दर्शन मात्र से ही आनन्दानुभूति होती है। अतः नाटक की समता चित्र से करते हुए आचार्य वामन ने काव्यालंकारसूत्र में लिखा है:

सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्धि चित्रं चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात् ।।

वास्तव में चित्र के विविधरङ्ग जिस प्रकार सहृदयों के चित्त में रसानुभूति कराते हैं, उसी प्रकार नाटक वेश–भूषा, नेपथ्य–रचना आदि के माध्यम से दर्शक के हृदय में आनन्द का उदय करता है। काव्य में रसानुभूति कल्पना प्रस्तुत होने के कारण सहृदयों को हुआ करती है। नाटक में रसोपभोग की सकल सामग्री एकशः उपलब्ध होने के कारण ही इसे कवित्व की पराकाष्ठा माना गया है: 'नाटकान्तं कवित्वम्'।

नाटक का महत्व प्रतिपादित करते हुए भरत मुनि ने लिखा है कि इसमें केवल धर्म और देवों की ही चर्चा नहीं होती, अपितु विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें मानव जीवन के नानाविध पहलू धर्म, मनोरंजन, हास्य, युद्ध, श्रृंगार एवं श्रम आदि का विस्तार से चित्रण रहता है। नाटक के द्वारा दर्शकों के उत्साह में वृद्धि होती है। इतना ही नहीं बल्कि अनपढ़ सुपढ़ और सुपढ़ विशेषज्ञ हो जाते हैं। यह धनियों के लिए मनोंजन, दुःखियों के लिए आश्वासन, व्यवसायियों के लिए आय का साधन और व्याकुलों के लिए शान्तिप्रद है। नाटक में मानव जीवन की विविध जीवन–चर्याओं का निरूपण मिलता है। यह छोटे–बड़े सबके लिए हितोपदेशक, मनोरंजक और सुखप्रद है। साथ ही धर्म, यश, स्वास्थ्य, लाभ, ज्ञानवृद्धि, आचारलाभ आदि सकल मनोरथ सिद्धिदायक है:

अबुधानांल विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि।
ईश्वराणां विलाश्च स्थैर्य दुःखर्दितस्य च।
अथोपजीविनामों धृतिरुद्विग्न चेत साम् ॥
दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम्।
धर्म्य यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।[8]

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति– संस्कृत साहित्य में नाटक की उत्पत्ति का बीज वैदिक युग से ही प्राप्त होता है। महामुनि भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में उल्लेख किया है कि समस्त देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों के सारभाग से पंचमवेद श्नाट्य वेदश की रचना की, जिसमें ऋग्वेद से संवाद–कथोपकथन, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अर्थववेद से रस के तत्व को ग्रहण किया हैः

तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्।[9]
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्। नाट्यवेदं ततश्क्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्।।[10]

सबके लिए उपादेय होने के कारण ही भरत मुनि ने इसे सार्ववर्णिक वेद कहा है– 'त्रैलोकस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्'। वस्तुतः नाटक में तीनों लोक के भावों का अनुकीर्तन होता है। इसीलिए कालिदास ने भिन्न रूचि वाले लोगों के लिए नाटक को एक सामान्य मनोरञ्जन का साधन कहा है– 'नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्'। अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण नाटक का संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान है और उनमें अभिज्ञान शाकुन्तल नामक नाटक सर्वश्रेष्ठ है।कहा भी गया है किः

'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'।

कवि कुलगुरु कालिदास की काव्य प्रतिभा, उनकी कल्पनाशक्ति तथा उनकी नाट्य कुशलता का परिचय उनकी रचनाओं के मार्मिक प्रसंगों से ज्ञात होता है। शाकुन्तलम् के प्रथम अंक में भ्रमर वृत्तांत और सखियों से राजा का वार्तालाप दूसरे अंक में शकुन्तला के रूप लावण्य का वर्णन, तीसरे में शकुन्तला का विरह–मिलन वर्णन, चौथे में शकुन्तला की विदाई, पाँचवे में राजा और शाङ्र्गख विवाद, छठे में राजा का शोक तथा साँतवे अंक में पुत्र दर्शन और शकुन्तला मिलन का प्रसंग अत्यन्त कमनीय है।

सर्वप्रथम महाकवि कालिदास ने नान्दी पाठ के द्वारा अष्ट स्वरूप वाले भगवान् शिव की आराधना की हैः

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।[11]

उक्त आठ स्वरूपों में से आकाश और वायु प्रत्यक्ष नहीं हैं, अपितु इनका ज्ञान अनुमान से होता है। वायु का स्पर्श द्वारा और आकाश का शब्द द्वारा प्रत्यक्ष होता है। अस्तु कवि ने प्रत्यक्ष आठ स्वरूप वाले ईश (शिव) से समन्वित शिव से रक्षा करने की मंगल कामना किया है। विष्णु पुराण में शिव के आठ रूप बताये गये हैंः

सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुशकाशमेव च । दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः।।

महाकवि कालिदास काव्यकला की भाँति चित्रकला की सूक्ष्म भंगिमाओं के अंकन में भी सिद्धहस्त हैं।शकुन्तला के रूप–सौन्दर्य का चित्रांकन करते हुए दुष्यन्त कहते हैंः

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ।।[12]

अर्थात् विधाता ने चित्र में अङ्कित करके (उसमें) प्राणों का योग किया है, मन द्वारा रूपराशि से उसे बनाया है। ब्रह्मा के सामर्थ्य और उसके शरीर का ध्यान करके वह शकुन्तला मुझे ब्रह्मा की दूसरी उत्तम स्त्री–रत्न की रचना प्रतीत होती है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में महाकवि कालिदास अपनी अमृत–निष्यन्दी मोहक परिकल्पना–वितान की छत्रछाया में बैठकर नायिका शकुन्तला का रूप–विन्यास करते हैं। वह रमणी–रत्न है। सौन्दर्य–सिन्धु का सारांश है। विश्व वन्द्या, वन्य बाला के ललित लावण्य को देखकर स्पष्ट है कि यह विधाता रचना–सामर्थ्य से भी विलक्षण एवं लोकोत्तर है। प्रकृत बिम्ब के रूपांकन अवलोकन करने से स्पष्ट है कि कालिदास काव्यकला की भाँति चित्रकला की स भंगिमाओं के अंकन में भी सिद्धहस्त हैं।

सौन्दर्य विभूति शकुन्तला के अक्षत कौमार्य की अभिव्यञ्जना करते हुए महाराज दुष्यन्त कहते हैं कि मेरे मन में यह है कि उसका निष्कलंक (अनिन्द्य) सौन्दर्य न सुँघे गये पुष्प, नाखूनों से न छेदे गये नूतन पल्लव (कोंपल), न बींधे गये रत्न, न चखे गये नवीन मधु के रस और पुण्य कर्मों के परिपूर्ण फल समान है। न जाने विधाता किसे इसे भोगने वाला बनायेगाः

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं करः है–रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।[13]

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल के चतुर्थ अंक में अपने लोकोत्तर कोमल कल्पना वल्लरी का मोहक वितान्त प्रस्तुत किया है जो वस्तुतःवन्य प्रकृति के प्रति मृग, मयूर,वृक्ष,वीरुध,लता,कुञ्ज,वन,बाग,सरोवर के प्रति सहोदर अनुराग का ऐसा मञ्जुल चित्र साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ हैः

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या, नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः, सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।।[14]

अर्थात् आप लोगों को जल पिलाये बिना (सिञ्चन किये बिना) जो शकुन्तला, पहले जल पीने का प्रयत्न नहीं करती थी, आभूषण प्रिय होती हुई भी जो आप लोगों के प्रति स्नेह के कारण नवीन पत्ते को नहीं तोड़ती थी। आप लोगों के जब प्रथम पुष्पोद्गम (पुष्प विकसित होने या निकलने) के समय पर जिसका उत्सव होता था वहीं यह शकुन्तला (अपने) पतिगृह जा रही है, आप सभी अनुमति दें।

सशक्त भावाभिव्यञ्जक होने के कारण विद्वानों ने अभिज्ञान शाकुन्तल के चतुर्थ अंक चार प्रमुख श्लोकों को श्रेष्ठ माना है,जिनमें से प्रथम और शिरोमणि श्लोक है–

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया, कण्ठःस्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।[15]

महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति एवं सदाचार के पोषक रचनाकार हैं, जिसकी अभिव्यञ्जना उनके ग्रन्थों में स्थान–स्थान पर हुई है। पतिगृह प्रस्थान करती हुई शकुन्तला के समक्ष आनन्दाश्रु प्रवाहित करते हुए तात कण्व समुपस्थित है।

महर्षि कण्व/काश्यप अपनी पुत्री शकुन्तला को पतिगृह/ससुराल भेजते हुए शिष्य शार्ंगरव से कहते हैं कि तुम मेरी ओर से महाराज से यह निवेदन करना–

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन–स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं बधूबन्धुभिः।।[16]

प्रस्तुत सुललित श्लोक में गृहस्थ जीवन के धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित दूरदर्शी आचार्य के जामाता के रूप प्रतिष्ठित महाराज दुष्यन्त के प्रति नम्र निवेदन है, जिसमें एक पिता के महनीय उत्तरदायित्व की गम्भीर भावना, अकिञ्चन पिता–ह्रदय की कारुणिक अभिव्यक्ति वर्चस्वी ऋषि का एक चक्रवर्ती राजा के प्रति ओजस्वी उद्बोधन; समन्वित रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

वस्तुतः महाकवि कालिदास जीवन मूल्यों के संरक्षक एवं भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक रचनाकार हैं। उनकी कारयित्री प्रतिभा इन्हीं मूल्यों को अपनी रचनाओं द्वारा प्रतिष्ठित एवं संरक्षित करने का प्रयास करती है। प्रस्तुत श्लोक में इन्हीं विचार भङ्गिमाओं से ओत–प्रोत होकर पतिगृह प्रस्थान करती हुई कुलाङ्गना को एक आस्थावादी पिता, जो मर्मस्पर्शी सन्देश प्रस्तुत करता है वह हमारे सामाजिक मूल्यों की सुन्दर धरोहर है। आदरणीय गुरुजनों की (मान्यजनों की) सेवा, शुश्रूषा, सपत्नी जनों के साथ सखी–सा आचरण, पति के प्रति समर्पण, सेवकों, आश्रितों के प्रति उदारता और ऐश्वर्य के प्रति अभिमानशून्यता यही सद्गृहिणी जनों का शुभाचरण है। जिसके द्वारा वह गृहलक्ष्मी जैसे गौरव की अधिष्ठात्री बनती हैं। इसके विपरीत किया जाने वाला आचरण मनोव्यथा, मानसिक अशान्ति, अभिशाप, चिन्ता, मनस्ताप का कारण बनता है।

महाकवि कालिदास जीवन मूल्यों के संरक्षक एवं भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक रचनाकार हैं,पुत्री को ससुराल में किस प्रकार का आचरण करना है,उपदेश देते हैं–

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृतिं सपत्नीजने, भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी, यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयोः वामाः कुलस्याधयः।।[17]

प्रस्तुत सुललित श्लोक अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अङ्क का सर्वश्रेष्ठ श्लोक है, जिसकी भाव गहनता जगत विख्यात है। महर्षि कश्यप आशीर्वचनात्मक मंगलकामना करते हुए शकुन्तला के उत्तरार्द्ध जीवन का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य ।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।।[18]

प्रस्तुत सुललित श्लोक में महर्षि काश्यप आशीर्वचनात्मक मङ्गलकामना करते हुए शकुन्तला के उत्तरार्द्ध जीवन का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। भाव प्रवण होने के कारण, यह श्लोक विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसके माध्यम से कालिदास की आश्रम चतुष्टय की व्यवस्था के प्रति आस्था व्यक्त होती है, और शकुन्तला को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आमोघ आशीर्वचन भी प्राप्त होता है।

प्रस्तुत श्लोक की सघन भाव भरी व्यञ्जनायें अधोविन्यस्त रूपों में विश्लेषित की जा सकती हैं–

I. महीसपत्नी (पृथ्वी की सौत) राजा पृथ्वी का स्वामी (पति) होता है। अस्तु दुष्यन्त पृथिवी पति था। शकुन्तला भी उसकी अर्धांगिनी थी। इस प्रकार दुष्यन्त पृथ्वी और शकुन्तला दोनों का पति था। अतः शकुन्तला पृथ्वी की सौत हुई। इस शब्द द्वारा दुष्यन्त के चक्रवर्तित्व की और सर्वोपरि शासकत्व की व्यञ्जना है।
II. दौष्यन्तिम् – दुष्यन्तस्य अपत्यं पुमान् इति दौष्यन्ति। दुष्यन्त का पुत्र अभी उत्पन्न नहीं हुआ है। अतः उसका कोई नामकरण न होने से दौष्यन्त के द्वारा उसकी अभिव्यञ्जना की गयी है। जिसका आगम्यमान अभिप्राय भरत है।

प्रस्तुत सुललित श्लोक की सशक्त भावाभिव्यञ्जना के कारण समीक्षकों ने इसे चार प्रमुख श्लोकों में सम्मिलित किया है।

निष्कर्ष– काव्य में नाटक की रमणीयता सर्वविदित है। ह्रदय की समग्रतः अपनी विभूति से आकृष्ट करने का गुण नाट्यविधा में होता है। नाट्य साहित्य में अभिज्ञान शाकुन्तलम् की सर्वोच्च प्रतिष्ठा विद्वानों के मध्य सुविदित तथ्य है। ह्रदयग्राही एवं रुचिकर कथावस्तु से विलसित यह कृति विबुध जनों द्वारा अभिनन्दित है। कालिदास की मंगलविधायी चेतना का मणिमय निष्कर्ष "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" है। कालिदास की नाट्य–कृतियों में अन्तिम होने के कारण यह उनकी परिपक्व मेधा का जीवन्त स्फुरण है। कालिदास मानव मन की अतल गहराई में छिपे हुए भावों के कलात्मक चित्रण में सिद्धहस्त हैं। इसीलिए भारतीय तथा पाश्चात्त्य सभी विद्वानों ने कालिदास के चिन्तन मुक्ताओं का समान रूप से अभिनन्दन किया है तथा इनके काव्य सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कहा है:

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला । तत्राऽपि चतुर्थोऽङ्कः तत्र श्लोक चतुष्टयम् ।।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास आचार्य बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, पृ०–499.
2. डॉ.दिनेश प्रसाद तिवारी,अभिज्ञान शाकुन्तल,पूर्व–पीठिका।
3. डॉ.दिनेश प्रसाद तिवारी,अभिज्ञान शाकुन्तल,पूर्व–पीठिका।
4. मालविकाग्निमित्रम् 1/2.
5. नाट्यशास्त्र 1/116.
6. साहित्यदर्पण–6/1.
7. दशरूपक–1/7.
8. नाट्यशास्त्र –1/110–115.
9. नाट्यशास्त्र– 1/12.
10. नाट्यशास्त्र–1/16.
11. अभिज्ञान शाकुन्तल–1/1.
12. अभिज्ञान शाकुन्तल–2/9.
13. अभिज्ञान शाकुन्तल– 2/10.
14. अभिज्ञान शाकुन्तल– 4/9.
15. अभिज्ञान शाकुन्तल– 4/6.
16. अभिज्ञान शाकुन्तल– 4/17.
17. अभिज्ञान शाकुन्तल– 4/18.
18. अभिज्ञान शाकुन्तल– 4/20.

*****